इतिहासकारों के लिए चार सवाल

जयत नारलीकर

इतिहास केवल अतीत की घटनाओं और पात्रों की सूची नहीं है बल्कि इंसानी समाजों और संस्कृतियों के क्रमिक विकास का अध्ययन है। हालांकि यह सच है कि समय-समय पर कुछ विशिष्ट इंसानी पात्रों और घटनाओं ने विकास की इस प्रक्रिया को नई दिशा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। मगर, फिर भी विकास की यह प्रक्रिया ज्ञान के संवर्धन के साथ धीमी किन्तु निश्चित गति से आगे बढ़ती रही और इंसानी समाज भी इनके अनुसार अपने आपको ढालता रहा। प्राचीन काल की विज्ञान और तकनीकी भी, चाहे आज वह कितना ही आदिम क्यों न लगे, इसी ज्ञान का एक भाग थी जिसने सभ्यताओं के विकास में प्रमुख भूमिका निभाई थी। आग की खोज या आग उत्पन्न करने की कला, पत्थरों के औज़ारों से धातु के औज़ारों तक का संक्रमण (ट्रांज़िशन) तथा खेती की शुरुआत, मानव

समाज के ऐतिहासिक विकास की प्रमुख घटनाएं रही हैं।

हम बहुधा विज्ञान के इतिहास की बात कुछ इस प्रकार करते हैं जैसे यह इतिहास की कोई पृथक शाखा हो, जो वैज्ञानिक ज्ञान के विकास की बात बताती हो कि किस प्रकार महत्वपूर्ण आविष्कार हुए, किस प्रकार विज्ञान से सम्बंधित विवाद उत्पन्न और समाप्त हुए, किस प्रकार विभिन्न परिस्थितियों ने इसके विकास में बाधाएं पहुंचाई और किस प्रकार कुछ दुर्घटनाओं ने नए आविष्कारों को जन्म दिया। मेरे विचार से विज्ञान के इतिहास का क्षेत्र इन सबसे कहीं ज़्यादा व्यापक होना चाहिए। इसमें विज्ञान और समाज की अंतर्क्रिया भी शामिल होनी चाहिए क्योंकि विज्ञान समाज को प्रभावित करने वाला एक तत्व रहा है और सामाजिक प्रभाव वैज्ञानिक सोच को नियंत्रित करता रहा है।

हमें अपने इतिहास को भी इसी परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए। वैज्ञानिक सोच की स्थिति या विकास से सम्बंधित प्रश्नों के साथ-साथ, अपने प्राचीन ग्रंथों में संदर्भित वैज्ञानिक जानकारी के आधार पर उन ग्रंथों के काल निर्धारण से सम्बंधित प्रश्नों को भी इसी परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए। इस लेख में मैंने इसी प्रकार के कुछ प्रश्नों को उठाने की कोशिश की है।

प्रश्न:1 वेदों की वैज्ञानिक विषय वस्तु क्या है?

हम अक्सर ऐसे वक्तव्य सुनते हैं कि अगर हम वेदों की सही ढंग से व्याख्या करना सीख लें तो आधुनिक विज्ञान के सभी महत्वपूर्ण आविष्कार उसमें पा सकते हैं। इस संदर्भ में तथाकथित 'वैदिक गणित' की काफी चर्चा होती है। साथ ही यह बताया जाता है कि चूंकि रामायण और महाभारत में नियंत्रित प्रक्षेपास्त्रों का ज़िक्र आता है तो उस समय का समाज निश्चित ही तकनीकी रूप से काफी विकसित रहा होगा।

एक आम हिन्दुस्तानी विकसित पश्चिमी देशों से बराबरी करने के लिए अपने देश के लिए एक 'गौरवपूर्ण' अतीत खोजना चाहता है जो वर्तमान के 'विकासशील देश' के दर्जे की भरपाई करे। इतिहासविदों को ऐसे पूर्वाग्रहों को दूर करना होगा और जो कुछ भी जानकारी प्राचीन साहित्य में है उसे

निष्पक्ष भाव से आकलन कर उजागर करना होगा।

आइए इसी संदर्भ में हम वैदिक गणित को देखें। जहां तक मैंने इनकी व्याख्याओं को देखा है मुझे तो ये तीव्र गणना के तरीकों का संकलन प्रतीत होता है। और इनमें स्थान-विज्ञान (Topology) के ज़्यादा परिष्कृत स्तरों या बीज-गणितीय रेखागणित (Algebraic Geometry) तो दूर, उच्च गणित की मूलभूत बातें जैसे अंक सिद्धांत (Number Theory) या उच्च बीज गणित या रेखा गणित के प्रमेय आदि भी शामिल नहीं हैं। मुझे तो बड़ी खुशी होगी अगर वैदिक गणित के विद्वान मुझे गलत साबित कर दें। मगर इसके लिए उन्हें स्पष्ट रूप से निरूपित स्वमंसिद्ध सूक्तियों से शुरू करके परिष्कृत गणितीय परिणाम निकाल कर दिखाना होगा। *

आइए अब हम प्राचीन काल में उच्च तकनीकी (प्रौद्योगिकी) के दावों पर सोच-विचार करते हैं। ऐसे दावों को महाकाव्यों पर आधारित करना बिल्कुल गलत है क्योंकि ये साहित्यिक रचनाएं थीं, तकनीकी विवरण नहीं। ये तो ऐसा ही होगा जैसे अगर हम 'ग्रिम की परी कथाओं' को पढ़कर यह निष्कर्ष निकालें कि 17वीं से 19वीं सदी में यूरोप के लोग जादूगरी और प्रेतकलाओं में माहिर थे। इसकी बजाए हम कुछ प्रासंगिक सवाल उठा सकते हैं जैसे क्या कोई ऐसा विवरण मिलता है जिससे हमें यह पता चले कि उस वक्त लोगों को बुनियादी सुविधाएं जैसे नल का पानी, जल-निकास तंत्र या बिजली की व्यवस्था आदि प्राप्त थीं? नाभिकीय ऊर्जा व प्रक्षेपास्त्र बनाने से कहीं ज़्यादा आसान विद्युत का उत्पादन और नगरीय जनता तक उसका वितरण होता है। क्या हमें कोई ऐसा विवरण मिलता है जो यह बताता हो कि विद्युत या चुम्बकीय शक्तियों की जानकारी उस वक्त थी और जिसका उपयोग उस वक्त विद्युत के उत्पादन में किया जा रहा था?

ऐसे भी दावे हैं कि कुछ वैदिक स्रोत वर्णन करते हैं कि किस प्रकार सूर्य हाइड्रोजन और हीलियम के नाभिकीय संलयन (Fusion) के द्वारा अपनी शक्ति प्राप्त करता है। अगर हम इस वर्णन को स्वीकार कर भी लें तब भी इससे हमें यह पता नहीं चलता कि सूर्य की आंतरिक संरचना कैसी

** 'वैदिक गणित' नाम की पुस्तक में जगतगुरू शंकराचार्य ने कई गणितीय सूत्रों का उल्लेख किया है। इनके बारे में उनका कहना था कि ये अथर्ववेद के 'परिशिष्ट' में हैं। परन्तु आज तक अथर्ववेद के किसी भी परिशिष्ट में ये सूत्र नहीं मिले हैं। अतः विद्वानों का मत है कि ये सूत्र वैदिक काल के नहीं बल्कि आधुनिक काल के हैं। –संपादक मंडल*

है, किस प्रकार यह संतुलन में रहता है या किस प्रकार इसकी ऊर्जा इसके केन्द्र से सतह तक आती है आदि। इन सारी बातों को जानने के लिए आज हमें गुरुत्वाकर्षण, विद्युत और चुम्बकत्व, द्रवस्थैतिकी आदि का ज्ञान होना ज़रूरी है। सीधे तौर पर यह कह देना कि दीर्घात्मा ऋषि यह जानते थे कि सूर्य की ऊर्जा नाभिकीय संलयन से प्राप्त होती है, पर्याप्त नहीं है।

संक्षेप में कहें तो हमें संपूर्ण तकनीकी साहित्य की ज़रूरत है, एक सतही काव्यात्मक विवरण की नहीं। ऐसा कहा जाता है कि वेदों में ये सभी जानकारियां गूढ़ भाषा में मौजूद हैं और उनका सही मायने में अर्थ निकालना ज़रूरी है। अगर ऐसी बात है तो पहले उस खास भाषा की स्पष्ट और निर्विवाद कुंजी उपलब्ध कराना होगा। कुछ वैदिक भाषा के विद्वान मिलकर इसकी भाषा की गुत्थियों को सुलझाएं और एक मत हो जाएं, इससे पहले कि वे वैदिक वैज्ञानिक साहित्य की व्याख्या करें; तभी इस प्रयास की प्रामाणिकता सिद्ध होगी। ऐसा शोध निश्चित रूप से लाभप्रद रहेगा। मगर इस शोध में शोधकर्त्ता पश्चिमी विज्ञान की जानकारियों के आधार पर उत्तर ढूंढने की कोशिश न करें। इसके अतिरिक्त अगर इस शोध से कुछ ऐसे वैज्ञानिक तथ्य निकल कर आते हैं जिनकी जानकारी अभी तक आधुनिक विज्ञान को नहीं है, तो इन दावों को और भी बल मिलेगा।

प्रश्न:2 क्या खगोलीय उल्लेखों/संकेतों का इस्तेमाल प्राचीन रचनाओं की तारीखें जानने के लिए किया जा सकता है?

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने अपने लेख 'द ओरायन' में एक अनोखा प्रयोग लिखा था जो संक्षेप में कुछ इस प्रकार था।

तिलक वैसे तो एक स्वतंत्रता सेनानी के रूप में ज़्यादा प्रसिद्ध हैं मगर वो संस्कृत के विद्वान भी थे और उन्हें गणित और खगोलशास्त्र में विशेष रुचि थी। जब वे गीता का भाष्य (गीता रहस्य) लिख रहे थे तो एक छंद ने उन्हें सोच में डाल दिया।

गीता के दसवें भाग में भगवान कृष्ण अपनी तुलना प्रकृति की सभी श्रेष्ठ सजीव और निर्जीव चीज़ों से करते हैं। मगर तिलक का ध्यान जिस एक वाक्य ने अपनी ओर खींचा वो कुछ इस प्रकार था।

"मासानाम मार्गशीर्षोहम् ऋतूनाम कुसुमाकरः"

अर्थात, महीनों में वो 'मार्गशीर्ष' हैं जबकि ऋतुओं में 'बसंत'।

यहां सोचने की बात यह थी कि वर्तमान हिन्दू पंचांग के अनुसार 'मार्गशीर्ष' महीना, जिसकी पहचान

'मृगशिरस' (Orion) तारामंडल से होती है, बसंत ऋतु में नहीं बल्कि शरद ऋतु में आता है। तो ऐसी विसंगति क्यों? क्यों नहीं सबसे अच्छा महीना सबसे अच्छी ऋतु का होता है?

इसका विश्लेषण करते समय तिलक का मानना था कि उक्त वर्णन, उस युग में जिसमें यह बात कही गई थी, सही रहा होगा। क्योंकि विषुव के घूमने (Precession Of Equinoxes) के कारण उस वक्त वर्ष का पहला महीना 'मार्गशीर्ष' था लेकिन अब ऐसा नहीं है। अपने शोध को आगे बढ़ाते हुए तिलक ने वेदों में ऋतुओं और तारामंडलों के उल्लेखों को ढूंढा और उनकी विसंगति को समझने के लिए तर्क दिया कि हमें विषुव के घूमने का अनुमान लगाना पड़ेगा। और इस खगोलीय जानकारी के आधार पर हम उस युग का अनुमान लगा सकते हैं जब वेदों में इनका उल्लेख किया गया होगा। मगर यदि हम तिलक की इन गणनाओं को मानें तो वेदों तथा आर्यों का आरंभिक काल 6000 ई. पू. तक पहुंच जाता है।

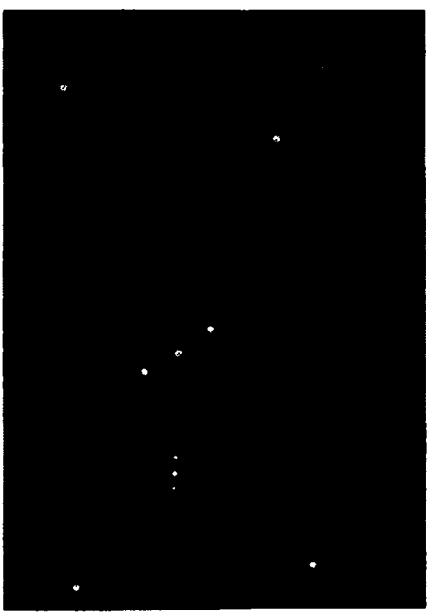

ओरायन यानी मृगशिरस तारामंडल: आसमान में काफी आसानी से पहचाना जा सकने वाला तारामंडल। साधारण कैमरे से ली गई तस्वीर में इस तारामंडल के प्रमुख तारे दिखाई दे रहे हैं।

बहुत से विद्वान तिलक की इन गणनाओं से सहमत नहीं हैं। उनका मानना है कि ये गणनाएं वेदों को उनके समय से, जो साहित्यिक विकास, इतिहास और नृशास्त्र के आधार पर तय किए गए हैं, काफी पीछे ले जाती हैं। हालांकि खगोलीय गणनाओं के अनुसार तिलक के तरीके में कोई खामी नहीं है। अगर इनमें कोई कमी है तो वो यह कि वे खगोलीय उल्लेख जिन पर यह सिद्धांत आधारित है कितने स्पष्ट हैं; जैसा कि मैंने पहले भी कहा था वेदों की भाषा बहुत आसान या स्पष्ट नहीं है।

उपरोक्त उदाहरण इतिहास, साहित्य और खगोल शास्त्र के मिले-जुले प्रयास की ओर इशारा है। कुछ दूसरे खगोलीय संदर्भ भी हो सकते हैं जैसे, ग्रहण, ग्रहों के परिप्रेक्ष्य में कुछ खास नक्षत्रों का उदय या अस्त होना, धूमकेतुओं का आगमन आदि। इनके अलावा ग्रहों की गति भी समय की अच्छी जानकारी दे सकती है। आज नए-नए कम्प्यूटर प्रोग्रामों की बदौलत इनकी मति काफी शुद्धता से नापी जा सकती है। हेली धूमकेतु जैसे कुछ मशहूर धमूकेतुओं को भी काल निर्धारण में इस्तेमाल किया जा सकता है। इस तरह अगर साहित्यिक रचनाओं में वर्णित खगोलीय दृश्यों की सत्यता स्थापित की जा सके कि ये उसी वक्त के हैं जिस वक्त इन साहित्यिक रचनाओं का संकलन हुआ था, और इन्हें बाद में नहीं जोड़ा गया है तो खगोलशास्त्र इनके काल निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

प्रश्न:3 क्या भारत में सिद्धांतिक काल में कोई सुपर-नोवा देखा गया था?

यहां मैं क्रैब नेबुला (Crab Nebula) के उदाहरण से शुरू करता हूं। ये खगोलविदों में काफी प्रसिद्ध रहा है क्योंकि कई प्राचीन सभ्यताओं ने इसे एक विस्फोटक तारे के रूप में देखा था। मैंने ये उदाहरण इसलिए चुना क्योंकि ये उसी समय की बात है जब भारतीय खगोल शास्त्र अपने 'सिद्धांतिक काल' में फल-फूल रहा था। (5वीं शताब्दी में आर्यभट से लेकर 12वीं शताब्दी में भास्कर द्वितीय तक के काल को मैं सिद्धांतिक काल मानता हूं।)

नौ सौ वर्ष पहले से ही चीन और जापान के खगोलविद् सभी आकाशीय पिण्डों की बड़ी ही सूक्ष्म जानकारियों का लेखा-जोखा रखा करते थे। ऐसा करने के पीछे उनका उद्देश्य मुख्य रूप से ज्योतिष होता था। वहां यह माना जाता था कि अगर उनके देश का राजा सदाचार के रास्ते से हटकर बुरा व्यवहार करेगा तो भगवान उसे सज़ा देंगे और इसकी चेतावनी स्वरूप आकाश में कुछ आश्चर्यजनक घटनाएं घटेंगी। इसलिए वहां के शाही (राजकीय) ज्योतिषी की यह ज़िम्मेदारी होती थी कि वह आकाश पर नज़र रखे और वहां होने वाली किसी भी अजनबी हरकत की जानकारी दे।

आकाश में तारों की सुनिश्चित गतिविधियों तथा ग्रहों की कुछ अनिश्चित लेकिन फिर भी पुर्वानुमानित गतिविधियों के अलावा, कुछ असामान्य घटनाएं भी होती रहती हैं जैसे सूर्य और चंद्र ग्रहण, उल्कापात या धूमकेतुओं का आना-जाना आदि। लेकिन 4 जुलाई 1054 ई. (आज के कैलेंडर के आधार पर) को सुंग साम्राज्य के ज्योतिषियों ने जो कुछ

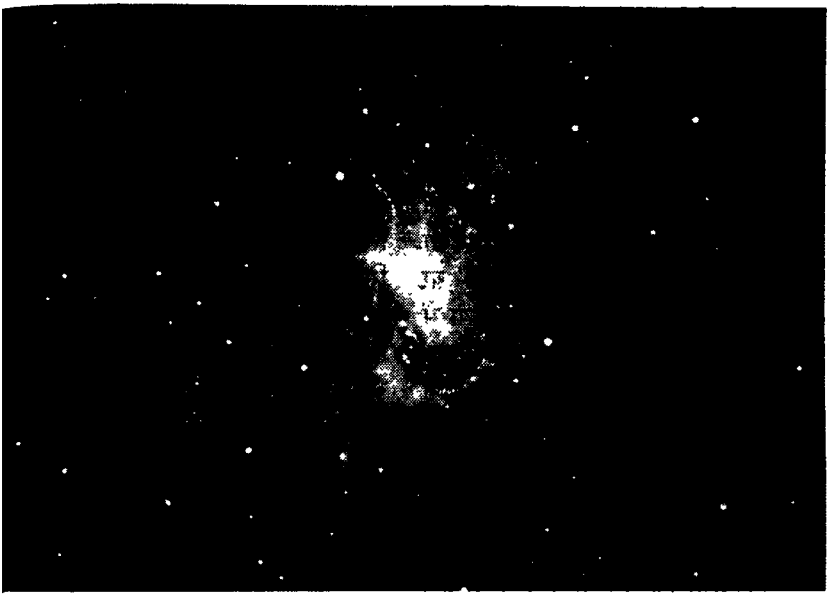

क्रैब नेबुला: जुलाई 1054 में चीन में इस सुपर नोवा विस्फोट को रिकॉर्ड किया गया था। 1731 में इस सुपर नोवा के अवशेषों की खोज दोबारा से की गई। आज भी इस क्रैब नेबुला के अवशेष देखे जा सकते हैं। छह हज़ार प्रकाश वर्ष की दूरी पर स्थित इस नेबुला से लगभग सभी तरंग लम्बाइयों की तरंगें निकल रही हैं।

भी देखा वो उनके लिए बहुत ही अचंभित कर देने वाला था। उनके दस्तावेज़ों के अनुसार:

"ची हो के राज्य के पांचवें वर्ष में एक ची छाऊ के दिन थियेन-काउन से कुछ इंच दक्षिण -पूर्व में एक 'मेहमान तारा' उभरा। एक वर्ष से कुछ ज़्यादा दिनों तक दिखाई देने के बाद वह लुप्त हो गया।"

किसी नए तारे का अवतरित होना, वो भी एक ऐसा तारा जो इतना चमकीला था कि दिन में भी दिखाई पड़े और शुक्र ग्रह से पांच गुना ज़्यादा चमकीला दिखे – निश्चित रूप से विचारणीय विषय था। परन्तु यह तारा ज़्यादा दिनों तक इतना चमकीला नहीं रहा। धीरे-धीरे इसकी चमक धूमिल होने लगी और दो सालों में यह नंगी आंखों से दिखाई देना बंद हो गया। लेकिन आसमान में इसका स्थान दूसरे

तारों जैसे ही स्थिर था। चीनी और जापानी दस्तावेज़ों में वर्णित इसकी स्थिति "थियेन काउन से कुछ इंच दक्षिण पूर्व" वृषभ राशि के ज़ीटा टौरी (Zeta Tauri) की ओर संकेत करता है। और क्योंकि यह तारा केवल कुछ ही समय के लिए अवतरित हुआ था इसलिए इसे 'मेहमान तारा' या 'नवागंतुक तारा' कहते हैं। दुनिया में और भी जगहों पर अर्थात भारत, यूरोप, मध्यपूर्व और अमेरिका में भी लोगों ने इस महत्वपूर्ण घटना को देखा होगा लेकिन दुर्भाग्य से और कहीं से भी इसके बारे में हमें कोई जानकारी नहीं मिलती।

जैसा कि मैंने पहले कहा था क्रैब सुपर-नोवा का समय भारतीय खगोल-शास्त्र के स्वर्णयुग का समय था। तो यहां यह जानना प्रासंगिक होगा कि क्या किसी भारतीय खगोलविद् ने इस महत्वपूर्ण घटना का ब्यौरा दिया है। हालांकि चार जुलाई दक्षिणी पश्चिमी मॉनसून का समय होता है और आसमान के बादलों से ढके होने की संभावना ज़्यादा रहती है; मगर ऐसा नहीं हो सकता कि उस दिन पूरा का पूरा भारतीय उपमहाद्वीप बादलों से ढका हो। इसके अतिरिक्त अपने अवतरण के बाद वह पिंड कई दिनों तक एक अत्यधिक चमकीले तारे के रूप में दिखाई देता रहा, जिसे न देख पाना असंभव ही कहा जा सकता है।

ऐसा कहा जाता है कि हम हिन्दुस्तानियों की तो मौखिक परंपरा रही है और हम कभी किसी चीज़ के बारे में लिखित ब्यौरा नहीं रखते। ऐसा हो सकता है लेकिन फिर भी मुझे लगता है कि इस घटना का कोई लिखित विवरण ज़रूर होगा क्योंकि सिद्धांतिक काल में खगोलविदों ने पुस्तकें तो लिखी थीं। ऐसी भी संभावना है कि चीन की तरह इन विवरणों का ज्योतिषीय महत्व हो और इसी संदर्भ में इसकी चर्चा की गई हो। यहां हम क्रैब नेबुला के अतिरिक्त उससे पहले के किसी और सुपर-नोवा के उल्लेख के बारे में भी जानना चाहेंगे क्योंकि ऐसी चमत्कारिक घटनाएं दो-तीन शताब्दियों में एकाध बार होती ही हैं

प्रश्न:4 सिद्धांतिक काल के बाद वैज्ञानिक गतिविधियां क्यों कम हो गईं?

अगर हम कुछ अपवादों को छोड़ दें तो पाते हैं कि बारहवीं शताब्दी के बाद, खगोलशास्त्र और गणित के क्षेत्र में भारत को जो अगुवाई हासिल थी वह खत्म हो गई। वास्तव में इसके कुछ शताब्दियों बाद जब यूरोप में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के एक नए युग का सूत्रपात हुआ तब हमारे देश में इन क्षेत्रों में कुछ भी नहीं हो रहा था। ऐसा क्यों?

इस प्रश्न पर बहुत से लोगों

अलग-अलग मौकों पर विचार किया है। उन्होंने इसके कई तरह के कारण भी बताए हैं जिन्हें मैं संक्षेप में प्रस्तुत करता हूं:

1. यूरोप की जलवायु हमेशा से प्रतिकूल थी। यहां के ठंडे मौसम में जीवन-यापन करना बड़ा ही चुनौतीपूर्ण कार्य था। इस कारण यहां के बहुत से लोग लाभप्रद उपनिवेशों की तलाश में समुद्री यात्राओं पर निकल पड़े। इन समुद्री यात्राओं ने इन्हें विज्ञान का सहारा लेकर जहाज़ निर्माण के नए तरीकों तथा समुद्री यात्रा के लिए ज़रूरी नए उपकरणों (Navigational Aids) की खोज करने पर मजबूर किया। जो लोग इन समुद्री यात्राओं पर नहीं गए उन्होंने भी विज्ञान और प्रौद्योगिकी का सहारा लेकर अपनी जीवन-शैली को सुधारने का काम शुरू किया जिससे कई नए आविष्कार हुए।

इसके विपरीत भारत की जलवायु यहां के निवासियों के काफी अनुकूल थी और यूरोप की तरह उनके लिए कोई चुनौती प्रस्तुत नहीं करती थी। इसके अतिरिक्त कुछ धार्मिक वर्जनाएं भी थीं जो भारतीयों को समुद्री यात्राएं करने से रोकती थीं। इन वर्जनाओं ने इन्हें उपनिवेशों की तलाश करने से भी निरुत्साहित किया।

2. हमारे धार्मिक और सामाजिक मूल्यों ने हमेशा से ही सादा जीवन और भौतिक सुख को त्यागने पर ज़ोर दिया है। ये मूल्य वैसे तो प्रशंसनीय हैं मगर इससे सुख सुविधाओं और विलासिता की वस्तुओं की तलाश पर रोक लग जाती है। फलस्वरूप व्यवहारिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी की चाहत कभी भी भारतीय परिवेश में नहीं पनप पाई।

3. विज्ञान की प्रगति के पीछे 'और जानने की चाहत व जिज्ञासा' होती है, रटंत विद्या नहीं। भारतीय शिक्षा व्यवस्था मुख्य रूप से शास्त्रों के मौखिक उच्चारण पर आधारित थी और इसी के द्वारा शताब्दियों तक ज्ञान आगे बढ़ता रहा। मगर इसका सबसे बड़ा नुकसान यह था कि नई बातें आसानी से सामने नहीं आ पाती थीं। ऐसी व्यवस्था में नए विचारों को जोड़ने का काम आर्यभट और भास्कराचार्य जैसे मौलिक और प्रबल विचारक ही कर सकते थे। मगर दुर्भाग्य से ऐसे विचारक भी कम ही उभर पाते थे।

4. यूरोप में विज्ञान और प्रौद्योगिकी को शाही परिवारों तथा अभिजात वर्ग का संरक्षण प्राप्त था। 'रॉयल सोसायटी' और 'फ्रेंच अकादमी' ऐसे ही शाही संरक्षण का नमूना हैं, लेकिन वहां खास बात थी कि अभिजात वर्ग वैज्ञानिक अन्वेषणों की सहायता करना संगीत और ललित कला की सहायता करने जितना ही उचित समझता था। इसकी तुलना में भारत में संगीत और

ललित कला को तो शाही और अभिजात वर्ग का संरक्षण मिला, मगर वैज्ञानिक अन्वेषणों को बिल्कुल नहीं। एक मुगल बादशाह, तानसेन को संरक्षण दे सकता था या ताजमहल बनवा सकता था, मगर विज्ञान को संरक्षण देना उसने कभी आवश्यक नहीं समझा।

आगे चलकर विज्ञान की इस अवहेलना की हमें बड़ी भारी कीमत चुकानी पड़ी क्योंकि अंग्रेज़ों ने हम पर केवल 'फूट डालो और राज करो' की नीति के कारण ही शासन नहीं किया बल्कि उनकी विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर कहीं ज्यादा पकड़ ने हम पर शासन करना आसान बना दिया था।

ये कुछ संभावित उत्तर हो सकते हैं मगर क्या ये पूरी बात बयान करते हैं? इसका जवाब हमारे वर्तमान के लिए भी सहायक हो सकता है क्योंकि आज विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने हमारे जीवन को अपने कब्ज़े में ले रखा है और ऐसे वक्त में इतिहास इन विषयों की महत्ता समझने में हमारी मदद कर सकता है।

मुझे लगता है कि मैंने अपनी अज्ञानता पर्याप्त रूप से व्यक्त कर दी है कि विज्ञान के इतिहास के किन क्षेत्रों में शोध करने पर महत्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त हो सकती हैं। 'अज्ञानता' इसलिए कि हो सकता है जिन सवालों के जवाब मैं जानना चाहता हूं वे पहले से ही मालूम हों। फिर भी इस महाद्वीप में वैज्ञानिक सोच के विकास की पूरी कहानी को एक साथ लाना – एक अत्यन्त महत्वपूर्ण परियोजना हो सकती है; और यहां जो प्रश्न मैंने उठाए हैं वे कुछ महत्वपूर्ण सवालों के नमूना मात्र हैं जिनका जवाब इस क्षेत्र में होने वाले शोध से ही प्राप्त हो पाएगा।

जयंत नारलीकर: पुणे के इंटर यूनिवर्सिटी सेंटर फॉर एस्ट्रोनॉमी एंड एस्ट्रोफिज़िक्स (IUCAA) में निदेशक हैं। उन्होंने ब्रह्मांड की उत्पति और विकास संबंधी परिकल्पना पर शोधकार्य किया है। IUCAA संस्थान को बनाने में उनकी विशेष भूमिका रही है। जयंतजी ने खगोल विज्ञान विषय पर मराठी और हिन्दी में लेखन किया है। उन्होंने अनेक विज्ञान कथाएं भी लिखी हैं। 'धूमकेतु' उनकी कथाओं का संग्रह है। उन्होंने एक विज्ञान उपन्यास 'आगन्तुक' भी लिखा है।

अनुवाद: गौतम पंडिय: एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम से जुड़े हैं।

यह लेख *'साइंस, फिलॉस्फी एंड कल्चर'* किताब में प्रकाशित लेख Four Questions That History Might Answer से लिया गया है।